वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण १०, सोमवार
दिनांक-२१-०६-१९७६, गाथा-२३ से २५, प्रवचन-१४

परमात्मप्रकाश, २३ गाथा। यहाँ तक आया है। **वह आत्मा निर्विकल्प है, अमूर्तिक है, इसलिए इन तीनों से नहीं जान सकते।** तीन कौन? मन, इन्द्रिय और शब्द। तीन से आत्मा जानने में आवे, ऐसा नहीं है। ऐसा है। **जो आत्मा निर्मल ध्यान के गम्य है....** आहाहा!

मुमुक्षु : मन तो मूर्तिक-अमूर्तिक सबको जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह यहाँ नहीं। यह विकल्प नहीं। यहाँ तो निर्विकल्प चैतन्य के ध्यान से आत्मा प्राप्त होता है। शब्द से, मन से नहीं, इन्द्रिय से नहीं। आहाहा! व्यवहार के विकल्प से भी नहीं, मन के सम्बन्ध से विकल्प उठें, उनसे भी नहीं। उनसे यह हो गया व्यवहार। वह तो अतीन्द्रिय निर्विकल्प ध्यानगम्य है। आहाहा! यह बात। है? **निर्मल ध्यान के गम्य है....**

मुमुक्षु : कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा।

मुमुक्षु : किसका?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना। आहाहा!

शुद्ध चैतन्यघन वस्तु जो आत्मा है, वह तो निर्विकल्प ज्ञान और ध्यानगम्य है। यह तो व्यवहार से होता है और निमित्त से होता है, यह बात यहाँ उड़ जाती है। आहाहा! **वही (आत्मा) आदि-अन्त रहित परमात्मा है।** स्वयं, हों! भगवान। आहाहा! वस्तु है न? अनन्त ज्ञायकभाव से भरपूर पदार्थ है। यह परमात्मस्वरूप ही है। यह ध्यानगम्य है। आहाहा! व्यवहार से ही ज्ञात हो, ऐसा यह नहीं है। देखो! इसका विवाद उठाते हैं। (तब) तो एकान्त हो जायेगा। अरे! भाई! अन्दर निर्विकल्प ध्यान से ज्ञात होता है, यही सम्यक् एकान्त है। व्यवहार से भी ज्ञात हो तो वह अनेकान्त कहलाये, ऐसा नहीं है।

मूल तो यह 'तत्त्वार्थराजवार्तिक' में आता है न? दो कारण से कार्य (होता

है)। यह डाला है। और एक समन्तभद्र आचार्य (का) समग्र शब्द आता है न? बाह्य -अभ्यन्तर समग्र। वह तो दूसरी बात है, भाई! अभ्यन्तर निर्विकल्प से प्राप्त हो, यह तो निश्चय तो यथार्थ है। उसे ऐसा का ऐसा रखकर, विकल्प साथ में निमित्त था, उसका ज्ञान कराने के लिये प्रमाण से यह बात की है। निश्चय में तो इस विकल्प से रहित, इतनी बात सिद्ध करके। ऐसी सूक्ष्म बात है। इस बात को तो ऐसा रखकर ही, फिर साथ में विकल्प था या निमित्त था, उसका ज्ञान कराने को प्रमाणज्ञान होने पर यह बात बोली जाती है। परन्तु इससे निर्विकल्प से प्राप्त होता है, यह बात मिथ्या करके विकल्प से प्राप्त होता है, ऐसी बात है—ऐसा नहीं है। अरे... अरे..! ऐसी कठिन बातें, भाई!

मूल तो पहला सिद्धान्त ही यह है और सत्य का स्वरूप ही यह है कि निर्विकल्प ध्यान में ही वह प्राप्त हो सकता है। समझ में आया? यह सत्य है, यह निश्चय है, यह यथार्थ है। परन्तु उसके साथ विकल्प अथवा निमित्त होता है, उसे प्रमाणज्ञान में इसकी बात रखकर, निमित्त का साथ में साधन है, ऐसा कहा है। वास्तव में तो यह है नहीं। आहाहा! ऐसा है कठिन यह, भाई! परमात्मा स्वयं आदि-अन्त रहित है। आहाहा!

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग—इन पाँच तरह आस्त्रवों से रहित.... पाँच प्रकार के विकल्प का आस्त्रव, उससे रहित। आहाहा! **निर्मल निज शुद्धात्मा के ज्ञानकर....** निर्मल निज शुद्धात्मा के ज्ञानकर **उत्पन्न हुए...** आहाहा! **नित्यानन्द सुखामृत का आस्वाद....** क्या कहा यह? निर्मल निज शुद्धात्मा का ज्ञान करके अन्दर से, उससे उत्पन्न हुआ नित्यानन्द सुखामृत आस्वाद। नित्य जो भगवान आत्मा का आनन्द, उसका सुखामृत का आस्वाद आया। **उस स्वरूप परिणत निर्विकल्प....** आहाहा! **अपने स्वरूप के ध्यानकर स्वरूप की प्राप्ति है।** आहाहा! ऐसा है। तब तुम सुनाते किसलिए हो? और ऐसा कहे, लो! अरे! भगवान! वाणी है, बापू! भाई! वाणी के काल में वाणी हो। परन्तु उस वाणी में ऐसा आया कि वाणी से और विकल्प से तू प्राप्त हो, ऐसा तू नहीं है। आहाहा! **उस स्वरूप परिणत निर्विकल्प अपने स्वरूप के ध्यानकर स्वरूप की प्राप्ति है।** भाषा देखो! आहाहा! भगवान निर्विकल्प आनन्दस्वरूप के निर्विकल्प ध्यान की परिणति से प्राप्त हो, ऐसा है। समझ में आया? **निर्विकल्प अपने स्वरूप के ध्यानकर....** है न? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान को अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति के

द्वारा वह ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! अभी बड़ा झगड़ा चलता है। आहाहा!

आत्मा ध्यानगम्य ही है,.... है? 'ही'। आहाहा! यह तो बाद में निकाला। पाठ तो इतना ही है। '**स्वादपरिणतस्य ध्यानस्य विषयः**' बस। ध्यान ही विषय, इतना संस्कृत है। इसलिए स्पष्टीकरण किया कि **आत्मा ध्यानगम्य ही है,...** यह टीका का स्पष्टीकरण है। टीका में नहीं। टीका में तो इतना ही है। जीव... आहाहा! '**निर्मलस्य स्वशुद्धात्म-संवित्तिसंजातनित्यानन्दैकसुखामृतास्वादपरिणतस्य ध्यानस्य विषयः।**' आहाहा! ४७ गाथा में यह कहा, वहाँ बृहद् द्रव्यसंग्रह में (कहा)। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' आहाहा! जो प्राप्त हुए हैं, वे ध्यान से प्राप्त हुए हैं। यह सब साधन तो है न?

मुमुक्षु : .... इसका उपाय...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त लक्ष्य... उपाय... यह अर्थकार ने कहा है। टीका में नहीं है। टीका में तो यह इतना ही है। '**नित्यानन्दैकसुखामृतास्वादपरिणतस्य ध्यानस्य विषयः**' बस। यह सिद्धान्त।

व्यवहार के विकल्प से रहित और शुद्ध आत्मा के ध्येय से जो शुद्ध परिणति प्रगट हुई, उससे वह आत्मा ज्ञात होता है और ध्यानगम्य (हो, ऐसा) विषय है। यह वस्तु की स्थिति है। लोग कहे, परन्तु इसका कुछ उपाय (है)? ऐसा कहते हैं। परन्तु यही उपाय है। **ध्यानगम्य ही है,....** यह स्पष्टीकरण। टीका का है न? '**ध्यानस्य विषयः**' इसका स्पष्टीकरण किया है। आहाहा! **शास्त्रगम्य नहीं है,...** लो! 'शास्त्र दिशा दिखाकर अलगा रहे।' आनन्दघनजी कहते हैं। दिखाये कि भाई! ऐसा है यह अन्दर, यह बतावे। स्वयं तो अन्दर भिन्न है। आहाहा!

क्योंकि जिनको शास्त्र सुनने से ध्यान की सिद्धि हो जाये,.... सुनने से हो जाये इसका अर्थ? सुनने में आया कि अन्तर निर्विकल्प ध्यान से प्राप्त होता है। इतना सुनने में आया और वह अन्दर गया। तो **सुनने से ध्यान की सिद्धि हो जाये,....** ऐसा मालूम पड़ा।

यही बात कहते हैं। शास्त्र ने ऐसा कहा, उसने ऐसा कहा कि निर्विकल्प ध्यान से तू प्राप्त करेगा, ऐसा शास्त्र ने इसे सुनाया। ऐसी बात है। आहाहा!

जिनको शास्त्र सुनने से ध्यान की सिद्धि.... अर्थात्? शास्त्रकार ने ऐसा कहा कि तेरा जो स्वरूप है, वह निर्विकल्प ज्ञान की परिणति द्वारा प्राप्त होता है, ऐसा शास्त्र ने कहा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! उसे ध्यान की सिद्धि हुई। निर्विकल्पदशा से निर्विकल्प वस्तु प्राप्त हुई, तब शास्त्र सुना था, उसका इसे निमित्त कहा जाता है। शास्त्र ने यह कहा था, ऐसा कहते हैं। यहाँ कहा न यह? '**ध्यानस्य विषयः**' क्या कहा यह? शास्त्र ने यह कहा। समझ में आया? यह शास्त्र ने यही कहा है। आहाहा! शास्त्र ऐसा कहता है कि तू ध्यान का विषय है। ऐसा इसने सुना, तब इसने आत्मा को ध्यान का विषय बनाया। इतना। परन्तु सुना, इसलिए बनाया और सुनने की ओर का विकल्प था, इसलिए ध्यान का विषय हुआ—ऐसा नहीं है। आहाहा!

वहाँ यह पूछा था। श्रीमद् के 'अगास' (आश्रम) गये थे न तब। निश्चय (सही) परन्तु उसका साधन क्या? क्योंकि उसमें आवे न? 'निश्चय रखकर लक्ष्य में साधन करना सोय'। उसका साधन ही यह एक प्रकार का। निर्विकल्प ध्यान से प्राप्त हो, यह एक ही साधन है। समझ में आया? यह बड़ा विवाद चलता है। वाद और विवाद और चर्चा। दो साधन चाहिए न! निश्चय और व्यवहार। भाई! इस व्यवहारसाधन को साधन कब कहा जाये? अपनी निर्विकल्प परिणति द्वारा वस्तु को जानकर, अनुभव किया, तब उस विकल्प को व्यवहार साधन का आरोप दिया गया। आरोप दिया गया। सहचर देखकर, निमित्तरूप से देखकर, उपचार करके व्यवहार कहा। आहाहा! टोडरमलजी का यह वाक्य (है)। ओहोहो! सातवें (अधिकार) में जो यह है, वह बहुत ऊँचा! कहा था न (संवत्) १९८४ के समय में यह लिख लिया था। कहा, यह तो माल है। यह निश्चय-व्यवहार का जो है न, वह लिखा था। १९८४ में। 'बगसरा' (में) जीवणलालजी ने लिखा था।

दो साधन नहीं। दो साधन का निरूपण है। एक स्वरूप को निर्विकल्प ध्यान से प्राप्त करना, यह एक ही साधन है। परन्तु साथ में शुभ विकल्प भी गुरु ने कहा, वह ध्यान में आया विकल्प से, उसे व्यवहार साधन का उपचार दिया जाता है। साधन है नहीं। व्यवहारनय से उसे उपचार (दिया जाता है)। यह अभूतार्थनय से है। आहाहा! २३वीं गाथा बहुत सरस।

जिनको शास्त्र सुनने से ध्यान की सिद्धि हो जाये, वे ही आत्मा का अनुभव कर सकते हैं,.... परन्तु ध्यान की सिद्धि हो वे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शास्त्र ने उसे कहा कि चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्णानन्दस्वरूप है, उसे निर्विकल्प परिणति से प्राप्त कर, ऐसा शास्त्र ने कहा। तब इसने ध्यान की सिद्धि प्रगट की। आहाहा! ऐसी बात है। है न? **जिन्होंने पाया, उन्होंने ध्यान से ही पाया है।** आहाहा! जिसे आत्मज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, वह ध्यान से ही प्राप्त हुए हैं। आहाहा! इसमें जरा यह श्रीमद् में है न, उसमें यह 'निश्चय रखकर लक्ष्य में।' साधन उस विकल्प को कहा है, वह व्यवहार है। आहाहा! स्वरूप में स्थिर न हो और तथापि वह साधन नहीं है। आता है, वह व्यवहार जाननेयोग्य आता है। ऐसा है। अन्तर वस्तु का जो पूर्ण स्वभाव, आदि-अन्त बिना का परमात्मतत्त्व, उसे अन्तर की निर्विकल्पधारा से पकड़ा और अनुभव किया, उसमें रह सका नहीं, फिर विकल्प आया, तथापि वह विकल्प आया; इसलिए व्यवहार साधन हुआ—ऐसा भी नहीं। आहाहा! वह तो आया, उसे जाननेयोग्य है। है, वैसा जानने (योग्य है)। परन्तु वह व्यवहार आया, इसलिए व्यवहार साधन भी हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं।

राग आया, उसे व्यवहार साधन उपचार से कहा। निर्विकल्प साधन है, इसलिए उसे विकल्प में उसे व्यवहार साधन कहा। परन्तु वह है नहीं। उसे उपचार से निमित्त का सहचर देखकर साधन का उपचार किया है। वह साधन नहीं है। बाधक है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : साधन....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक ही साधन है। इसकी शुद्ध परिणति, वह इसका साधन है। आहाहा!

मुमुक्षु : साधन और साध्य दोनों एक हुए?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही हुए। साध्य-ध्येय ध्रुव है। ऐसे साध्य देखो तो परमात्म (पद की) प्राप्ति करना, वह साध्य है। उसका उपाय यह है। ज्ञानानन्दस्वभाव की अपूर्ण निर्विकल्पपरिणति, वह उपाय और ज्ञान की, आत्मा की पूर्ण परिणति, वह उपेय, उसका फल। बीच में व्यवहार आवे, वह जाननेयोग्य है। परन्तु साधन-बाधन है

नहीं। आहाहा! ऐसी कठिन बातें, भाई! फिर यह विवाद करे। यह समग्र कहा है और इसमें ऐसा कहा। वह तो दूसरा निमित्त है, उसका ज्ञान कराया। आहाहा! समन्तभद्राचार्य में आता है। बाह्य और अभ्यन्तर समग्र से कार्य होता है, ऐसा आता है। उसमें आया है। उन्होंने उसमें डाला है। अरे! भाई! साधन तो अकेला निर्विकल्प ध्यान, वह एक ही साधन है। अभ्यन्तर वह साधन है। आहाहा! परन्तु उस साधन के साथ विकल्प को व्यवहार साधन का आरोप दिया है। साधन है नहीं। आहाहा! उसे प्रमाणज्ञान में दोनों को मिलाया है। परन्तु उस निश्चय को निश्चयपने को रखकर। उसे तोड़कर हो तो व्यवहार प्रमाण से भी सच्चा ज्ञान नहीं। क्या कहा, समझ में आया?

वस्तु है, वह निर्विकल्प से प्राप्त होती है, उसे रखकर प्रमाण निमित्त से होता है, ऐसा भुलाया। वह प्रमाण स्व से होता है, उसे तोड़कर हो तब तो वह प्रमाणज्ञान ही नहीं हुआ। निश्चय का निश्चयरूप से और व्यवहार का व्यवहाररूप से दो का (ज्ञान रहे) तो प्रमाणज्ञान कहलाता है। आहाहा! बराबर है? आहाहा! अरे! भगवान!

मुमुक्षु : .... लिखे, वह मान्य किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैसे लिखा, वैसे माना जाता है न? जिस अभिप्राय से लिखा था, उस अभिप्राय से बात होती है। जिस अभिप्राय से कहा है, उस अभिप्राय से बात करे। ऐसा कि दो कारण से कार्य होता है, ऐसा लिखा, ऐसा समझा न! परन्तु किसने इनकार किया? किस प्रकार से यह कहा गया है?

स्वरूप के निर्मल ध्यान से प्राप्त हो, यह बात तो रखी इसमें। यह रखकर निमित्त के राग में व्यवहार का आरोप दिया। उसे उत्थापकर दे, तब तो निश्चय और व्यवहार दो प्रमाणज्ञान ही सच्चा नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? इसे उत्थापे तो निश्चय आता नहीं तो वहाँ प्रमाणज्ञान कहाँ हुआ? आहाहा! गजब भाई!

तब तो प्रमाणज्ञान होगा नहीं। इसका ऐसा रखे तो दूसरे का ज्ञान हो। आहाहा! कठिन, भाई! ऐसी बातें! अरे! इसे समझने में आया नहीं। ऐसे झगड़े उठावे। भाई! तुझे कहाँ जाना है, बापू! इस सत्य को इस रूप से नहीं स्वीकार करे तो स्वरूप सन्मुख नहीं जा सकेगा। क्योंकि विकल्प का प्रेम रहेगा और उसे साधन मानेगा तो वहाँ से हट नहीं सकेगा। आहाहा! गिरधरभाई! सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! प्रभु! यह तो आत्मा का

मार्ग है, भाई! वीतरागस्वरूप परमात्मा स्वयं है। आत्मा वीतरागस्वरूप ही है। उसे प्राप्त करने की वीतराग परिणति साधन है। समझ में आया? फिर झगड़ा करे, बापू! भाई! इसका फल तो, भाई! तुझे भोगना पड़ेगा, बापू! असत्य को सत्य सिद्ध करना चाहे, वह नहीं होगा।

ऐसा समझकर... आहाहा! **अनादि-अनन्त चिद्रूप में अपना परिणमन लगाओ।** लो! अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु, ऐसे चिद्रूप—ज्ञानरूप वस्तु में अपने वर्तमान निर्विकल्प परिणाम लगाओ। आहाहा! टीका भी कैसी की है, देखो न! .... सत्य को सत्यरूप से रख, भाई! वस्तु सत्य है, उसे सत्यरूप से रख। वस्तु प्रभु है। अनन्त-अनन्त शक्ति का सागर सर्वस्व, सर्वस्व वस्तु पूरी (मौजूद है)। आहाहा! उसे प्राप्त करने को तो परिणति निर्विकल्प उसकी जाति की चाहिए। जो मोक्षस्वरूप है, उसे मोक्ष का मार्ग उसके स्वरूप की जाति का होता है। आहाहा! स्वद्रव्य का। ऐसा कहा न? पुण्य-पाप (अधिकार) में नहीं? द्रव्यान्तर का नहीं। आहाहा! उसे अन्य द्रव्य का सहारा नहीं। यह पुण्य आदि भाव, वह तो अन्य द्रव्य का सहारा है। मात्र उससे हुआ है, उसमें एक दूसरी चीज़ का ज्ञान कराने को उसे साधक का आरोप देकर दो कारण से कार्य हुआ, ऐसा कहने में आया है, प्रभु! उसमें से आगे-ऊँचा जाये तो भाई! सत्य वस्तु नहीं रहेगी। समझ में आया? शुकनलालजी! आहाहा!

ऐसा समझकर... शास्त्र सुनना, वह तो ध्यान का उपाय, परन्तु ध्यान करना, वह अपना साधन वह है। **ऐसा समझकर अनादि-अनन्त चिद्रूप में....** भगवान अनादि-अनन्त है... है... है... है... सत्.... सत्.... सत्.... पूरा अनन्त दल सामान्य स्वभाव, ध्रुव स्वभाव, अभेद स्वभाव, एकरूप स्वभाव। वास्तविक आत्मा निश्चय तो यह है। आहाहा! उसे प्राप्त करने की परिणति तो ध्यान की परिणति है। आहाहा! परिणाम लगाओ, ऐसा कहा न? **अपना परिणाम लगाओ।** उस प्रकार के निर्विकल्प के परिणाम यहाँ लगाओ। वीतरागी परिणाम लगाओ। क्योंकि वीतरागी स्वरूप भगवान है। आत्मा वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा! उसे वीतरागी परिणाम लगाओ। आहाहा! कैसी बात की, देखो न! अब उसमें खींचतान करके... भाई! वस्तु को वस्तुरूप से रहने दे, बापू! खींचतान करने से वह वस्तु प्राप्त नहीं होगी। इसकी हाँ तो कर। आहाहा!

अनादि-अनन्त चिद्रूप में अपना परिणमन लगाओ। इतनी भाषा तो देखो! यह विकल्प है, वह अपने परिणाम है ही नहीं। वह तो व्यवहार है। अजीव है। आहाहा! जीव स्वभाव में अनादि-अनन्त चिद्रूप स्वभाव, उसमें परिणाम लगाओ। वीतरागी परिणाम ध्यान के लगाओ। देवचन्दजी! ऐसी बात है, बापू! चर्चा करे, वाद करे, चाहे जो करे। नियमसार में कहा, प्रभु! कोई ऐसे मार्ग की निन्दा करे, एकान्त माननेवाले हैं। अपने निर्विकल्प से प्राप्त होता है। व्यवहार को मानते नहीं। व्यवहार से होता है, यह (कहते नहीं), ऐसी कोई निन्दा करे (तो भी) वस्तु के स्वरूप में अभक्ति नहीं करना। आहाहा!

मुमुक्षु : नियमसार में तो व्यवहार की हँसी की है, मश्करी की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मश्करी ही है न यह। मश्करी ही की है न। यह विधि! मश्करी करी है। बापू! आहाहा!

दूसरी जगह भी 'अन्यथा' इत्यादि कहा है। उसका यह भावार्थ है कि वेद शास्त्र तो अन्य तरह ही हैं,.... वेद अर्थात् वीतराग की वाणी। आहाहा! और शास्त्र अर्थात् मुनि के वाक्य। ऊपर आया है न? वह तो **अन्य तरह ही हैं, नय प्रमाणरूप हैं,....** वह तो नय और प्रमाण के विकल्प से (-ज्ञान से) ज्ञात हो, ऐसी वस्तु है। **ज्ञान की पण्डिताई कुछ और ही है,...** आहाहा! **वह आत्मा तो निर्विकल्प है,....** आहाहा! ज्ञान की पण्डिताई बड़ी ऐसी हो और वैसी हो और ऐसा हो। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा पण्डिताई का विषय नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। आहाहा! शास्त्र का बहुत ज्ञान करके, फिर व्यवहार निकाला उसमें से (कि) इससे होता है। ऐसी पण्डिताई काम नहीं आती, बापू! आहाहा!

पण्डिताई कुछ और ही है, वह आत्मा तो निर्विकल्प है,.... आहाहा! वस्तु निर्विकल्प है। निर्विकल्प परिणति से प्राप्त होती है। उसमें पण्डिताई-फण्डिताई कुछ काम करे, ऐसा नहीं, कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। व्यवहार का लक्ष्य छोड़ेगा, तब निश्चय पर लक्ष्य जायेगा। अर्थात् व्यवहार से प्राप्त होता है, यह बात तो कथनमात्र है। व्यवहारनय का आया है न? कथनमात्र नहीं आया कलश में? (पाँचवें) कलश में आया है। व्यवहारनय तो कथनमात्र है। आहाहा! कहने में यह आवे। वस्तु की स्थिति ऐसी नहीं है। आहाहा!

वह परमतत्त्व तो केवल आनन्दरूप है,.... आहाहा! देखा! **आत्मा निर्विकल्प है, नय प्रमाण निक्षेप से रहित है,.... तथा ज्ञान की पण्डिताई कुछ और ही है,.... परमतत्त्व तो केवल आनन्दरूप है,....** आहाहा! वस्तु जो भगवान आत्मा अकेला आनन्दरूप है। ऐसा कहकर क्या कहना चाहते हैं? कि विकल्प आदि व्यवहार है, वह तो दुःखरूप है। समझ में आया? उसके इस साधन में कैसे आवे? ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय परम आनन्द की मूर्ति प्रभु है वह तो। आहाहा!

और ये लोक अन्य ही मार्ग में लगे हुए हैं,.... आहाहा! यह यशस्तिलक का है। यशस्तिलक ग्रन्थ है न? उसमें से लिखा है इसमें। चम्पु नहीं? यशस्तिलक चम्पु है न यह? पुस्तक-ग्रन्थ उसमें लिखा है। अरे! कुछ लगे, व्यवहार में लगे और मानो मिल जायेगा। बापू! वस्तु तो अन्तर्मुख ध्यान में मिले, ऐसा है। बाकी कुछ है नहीं। आहाहा! बाकी सब फांफां। शास्त्र बहुत पढ़े। न्याय के ग्रन्थ बहुत पढ़े तो हाथ लग जाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह यात्रा करे तो भगवान प्राप्त हो जाये। भगवान की भक्ति से प्राप्त हो जाये, सब भ्रमणा है। आहाहा! लोग, मार्ग कुछ है और लगे कहीं है। ऐसा कहा है, देखो न! **अन्य ही मार्ग में लगे हुए हैं,....** आहाहा! मानो देव-गुरु की भक्ति करें तो उसमें से अपने को आत्मा मिल जायेगा। व्यवहार बहुत करें तो आत्मा मिल जायेगा। आहाहा! व्यवहार की दिशा परसन्मुख, उससे स्व दिशा सन्मुख की मदद मिले, यह कैसे हो? क्या समझ में आया? राग है, उसकी दिशा तो परसन्मुख है और निर्मल निर्विकल्प की दशा की दिशा तो स्वसन्मुख है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह श्लोक यशस्तिलक चम्पु का है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यशस्तिलक चम्पु, २५१। ऐसा लिखा है। अध्याय-५, गाथा-२५१। है यशस्तिलक चम्पु, अध्याय-५, गाथा-२५१। तब लिखी होगी। आहाहा!

आनन्द के नाथ को प्राप्त करने के लिये तो आनन्द की ही परिणति चाहिए, कहते हैं। विकल्प की परिणति तो दुःख की दशा है। आहाहा! ऐसी बात करते हैं न। आहाहा! भाई! तेरा आत्मा अन्दर आनन्दमूर्ति है, प्रभु! तू आनन्द का धाम है। 'स्वयं ज्योति सुखधाम' अतीन्द्रिय आनन्द की वस्तु तू है। अतीन्द्रिय आनन्दमय ही तू है। आहाहा! उसे अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति द्वारा ही पूर्णता के ध्येय को पा

सकता है। आहाहा! उसकी जाति की परिणति द्वारा वह जाति पैदा होती है, प्राप्त होती है। यह व्यवहार के विकल्प से प्रभु हाथ आवे, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

अरे! **लोक अन्य ही मार्ग में लगे हुए हैं,....** आहाहा! जिसकी ओर जाना, उसके मार्ग में न आकर, जिसकी ओर नहीं जाना, उसके मार्ग में जाते हैं। आहाहा! यह यशस्तिलक का अर्थ है, हों! देखो! है न? '**अन्यथा वेदपाण्डित्यं शास्त्रपाण्डित्यमन्यथा। अन्यथा परमं तत्त्वं लोकाः क्लिश्यन्ति चान्यथा।**' मुफ्त का क्लेश करता है, व्यवहार के विकल्प को उठाकर। यह मानो भक्ति से मिलेगा, यात्रा से मिलेगा, शास्त्रवांचन से मिलेगा। आहाहा! दुःख है। भान कहाँ है इसे। आहाहा!

सो वृथा क्लेश कर रहे हैं। आहाहा! भगवान परमानन्द के नाथ के निर्विकल्प ध्यान से प्राप्त करना चाहिए, निर्विकल्प शान्ति से प्राप्त करना चाहिए, उसके बदले अन्यत्र लगे हैं। आहाहा! यह साधन है व्यवहार का। अरे! प्रभु! परन्तु तू कहाँ जाता है? भाई! यह श्रीमद् (के अनुयायियों) में यह बड़ा घोटाला है। ऐसी बात एक मारवाड़ी ने पूछी, कि साधन? परन्तु साधन, यह साधन है, दूसरा साधन नहीं है। आहाहा! एकान्त सम्यक् साधक यह ही है। ऐई! बात ऐसी है।

इस जगह अर्थरूप शुद्धात्मा ही उपादेय है,... देखो! इसमें अर्थ अर्थात् पदार्थ-शुद्धात्मा। शुद्ध आत्मा, वह एक उपादेय है। **अन्य सब त्यागनेयोग्य हैं,...** लो! आहाहा! व्यवहार-ब्यवहार वह त्यागनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। उसका लक्ष्य छोड़नेयोग्य है। परमात्मप्रकाश में गजब काम किया है! ओहोहो! उसमें और अभी सौ (पुस्तकें) आ गयी। ठीक किया। पढ़े तो सही। अरे..! बापू! ऐसा अवसर मिलना मुश्किल, भाई!

यह सारांश समझना। अर्थात् कि नित्यानन्द प्रभु ही उपादेय है। वीतरागी परिणति में वही आदरणीय है। बाकी सब हेय है। हेय है, ऐसा भी करना नहीं। इस ओर की परिणति में इसे उपादेय माना तो वह हेय हो गया। आहाहा! समझ में आया? परमानन्द -स्वरूप पूर्ण आनन्दघन वस्तु, अकेला अतीन्द्रिय आनन्ददल... आहाहा!

'गगनमण्डल में गौआ विहाणी वसुधा दूध जमाया।
माखन था सो विरला पाया, छाछ में जगत भरमाया।

छाछ-मट्ठा। आहाहा!

मुमुक्षु : यह गगनमण्डल क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गगनमण्डल में आकाश की वाणी में से आया कि यह आत्मा ऐसा है, ऐसा आया। निरालम्बी वाणी निकली, गगनमण्डल में भगवान की वाणी। वसुधा—मनुष्य के कान में पड़ी, उसमें से मक्खन विरलों ने निकाला। यह तो कहे नहीं, इससे होता है, पर से होता है, पर से होता है, ऐसा करके रुका, वह छाछ में भरमा गया। आहाहा!

'गगनमण्डल में अधबीच कुआ, वहाँ है अमी का वासा।
सुगुरा हुए सो भर-भर पीवे, नगुरा जावे रे प्यासा।
अवधु सो जोगी गुरु मेरा,
गगनमण्डल में अधबीच कुआ।'

आत्मा अध्धर है न? कहाँ है? अमृत का कुँआ है, वह अमृत का सिन्धु है। आहाहा! परन्तु 'सुगुरा होवे सो वह भर-भर पीवे।' सुगुरु ने उसे ऐसा कहा, प्रभु! तेरी वस्तु तुझमें पड़ी है। उसकी ओर के ध्यान की परिणति से तुझे प्राप्त होगी। उसे यह मिली। 'नुगुरा जावे प्यासा।' जिसे बोध ऐसा मिला कि व्यवहार करते हुए होगा, निमित्त के अवलम्बन से होगा, उसे वह प्राप्त नहीं होगा। ऐई! आहाहा! यह २३ (गाथा) हुई।

बहुत सरस बात! आहाहा! एक ही बारह अंग का सार है। चौदह पूर्व का मक्खन है। आहाहा! तुझे बहुत क्या काम है? बापू! आहाहा! जहाँ है वहाँ जा न! विकल्प में तू कहाँ है? भगवान की भेंट करना हो तो वहाँ उसके सामने जा। आहाहा! भगवान के दर्शन करना हो तुझे, (तो) वीतरागी परिणति से उसके दर्शन होंगे, प्रभु! आहाहा! एकान्त लगे लोगों को, हों! निश्चयाभासी जैसा हो जाये, प्रभु! सुन, भाई! चाहे जो तू कहे, परन्तु मार्ग तो यह है। माननेवाले माने, न माननेवाले न माने। संख्या सत् की नहीं होती, अधिक नहीं होती, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' ऐसा पंथ है, प्रभु! आहाहा! २४ (गाथा)

गाथा - २४

अथ योऽसौ वेदादिविषयो न भवति परमात्मा समाधिविषयो भवति पुनरपि तस्यैव स्वरूपं व्यक्तं करोति –

२४) केवल–दंसण–णाणमउ केवल–सुक्ख–सहाउ।
केवल–वीरिउ सो मुणहि जो जि परावरु भाउ।।२४।।

केवलदर्शनज्ञानमयः केवलसुखस्वभावः।
केवलवीर्यस्तं मन्यस्व य एव परापरो भावः।।२४।।

केवलोऽसहायः ज्ञानदर्शनाभ्यां निर्वृत्तः केवलदर्शनज्ञानमयः केवलानन्तसुखस्वभावः केवलानन्तवीर्यस्वभाव इति यस्तमात्मानं मन्यस्व जानीहि। पुनश्च कथंभूतः य एव। यः परापरः परेभ्योऽर्हत्परमेष्ठिभ्यः पर उत्कृष्टो मुक्तिगतः शुद्धात्मा भावः पदार्थः स एव सर्वप्रकारेणोपादेय इति तात्पर्यार्थः।।२४।।

आगे कहते हैं कि जो परमात्मा वेदशास्त्रगम्य तथा इन्द्रियगम्य नहीं, केवल परमसमाधिरूप निर्विकल्पध्यानकर ही गम्य है, इसलिए उसी का स्वरूप फिर कहते हैं–

जो ज्ञानदर्शनमयी केवल सुखस्वभावी है सदा।
है वीर्य केवलमयी सर्वोत्कृष्ट वस्तु जानना।।२४।।

अन्वयार्थ :– [यः] जो [केवलदर्शन ज्ञानमयः] केवलज्ञान केवलदर्शनमयी है, अर्थात् जिसके परवस्तु का आश्रय (सहायता) नहीं, आप ही सब बातों में परिपूर्ण ऐसे ज्ञानदर्शनवाला है, [केवलसुखस्वभावः] जिसका केवलसुख स्वभाव है, और जो [केवलवीर्यः] अनंत वीर्यवाला है, [स एव] वही [परापरभावः] उत्कृष्ट अर्हंतपरमेष्ठी से भी अधिक स्वभाववाला सिद्धरूप शुद्धात्मा है [मन्यस्व] ऐसा मानो।

भावार्थ :– परमात्मा के दो भेद हैं, पहला सकलपरमात्मा, दूसरा निष्कलपरमात्मा, उनमें से कल अर्थात् शरीरसहित जो अरहंत भगवान् हैं वे साकार हैं, और जिनके शरीर नहीं ऐसे निष्कल परमात्मा निराकारस्वरूप सिद्धपरमेष्ठी हैं, वे सकल परमात्मा से भी उत्तम हैं, वही सिद्धरूप शुद्धात्मा ध्यान करने योग्य है।।२४।।

गाथा - २४ पर प्रवचन

२४। **जो परमात्मा वेदशास्त्रगम्य तथा इन्द्रियगम्य नहीं, केवल परमसमाधिरूप निर्विकल्पध्यानकर ही गम्य है, इसलिए उसी का स्वरूप फिर कहते हैं।** २४ में विशेष (कहते हैं)।

२४) केवल-दंसण-णाणमउ केवल-सुक्ख-सहाउ।
केवल-वीरिउ सो मुणहि जो जि परावरु भाउ।।२४।।

भगवान **जो केवलज्ञान केवलदर्शनमयी है,....** आहाहा! सिद्ध को है और स्वयं भी आत्मा ऐसा है। आगे सिद्ध कहेंगे फिर २५वीं गाथा में। परन्तु आत्मा ही ऐसा है। सिद्ध जैसा ही आत्मा है। आहाहा! **केवलज्ञान केवलदर्शनमयी है,....** अकेला ज्ञान और अकेला दर्शनमयी भगवान आत्मा है। **जिसके परवस्तु का आश्रय नहीं,....** भगवान आत्मा अकेला ज्ञान और आनन्दमय है। उसे पर का आश्रय है नहीं। **आप ही सब बातों में परिपूर्ण ऐसे ज्ञान दर्शनवाला है,....** आहाहा! **सब बातों में परिपूर्ण ऐसे ज्ञानदर्शनवाला...** सब बातों से पूरा है। आहाहा!

भगवान आत्मा अकेला ज्ञान और दर्शनमय वस्तु। सर्व बातों से वह पूरा है, प्रभु! आहाहा! **जिसका केवलसुख स्वभाव है,....** अकेला आनन्द जिसका स्वभाव है। वस्तु की शक्ति अकेली आनन्दमय है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दरूप जिसका स्वरूप है। आहाहा! ऐसा जो यह भगवान आत्मा **और जो अनन्त वीर्यवाला है,...** ओहो! जिसका बल अनन्त है। जिसका स्वभाव अनन्त वीर्यवाला है। आहाहा! पर्याय का वीर्य प्रगटे, वह तो अनन्तवें भाग है, परन्तु भगवान आत्मा का जो स्वभाव वीर्य, वह तो अनन्त बल वीर्य। आहाहा! जिसके बल के स्वभाव के—शक्ति के भाग करो तो अनन्त-अनन्त हों, पूरा न पड़े ऐसा उसका पूर्ण वीर्य है। आहाहा!

वही उत्कृष्ट अर्हंतपरमेष्ठी से भी.... ऐसे जो अरिहन्त हैं, उससे भी **अधिक स्वभाववाला सिद्धरूप शुद्धात्मा है....** उनसे भी अधिक तो सिद्ध आत्मा हैं। ऐसा ही आत्मा है। वापस ऐसा कहना है। आहाहा! समझ में आया? पामरता की आदत पड़ गयी न, इसलिए प्रभुता इसे बैठती नहीं। आहाहा! एक-एक गुण में प्रभु परिपूर्ण सर्वस्व सार है। आहाहा! ऐसा अरिहन्त के स्वरूप से भी सिद्ध का स्वरूप उत्कृष्ट है। आहाहा!

है ? **ऐसा मानो।** उसमें से भी यह आत्मा उत्तम है, ऐसा सिद्ध करना है। वाद-विवाद करने से पार नहीं आता। आहाहा!

मुमुक्षु : चर्चा करना, वह तो राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग और वह भी वाद-विवाद... कहा न ? 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वादविवाद करे सो अन्धा।' आहाहा!

परमात्मा के दो भेद हैं,.... पहले सकलपरमात्मा—शरीरवाले अरिहन्त। **दूसरा निष्कलपरमात्मा....** शरीररहित सिद्ध। **उनमें से कल अर्थात् शरीर सहित जो अरहन्त भगवान हैं,....** सकल कहा न ? सकल अर्थात् कल सहित—शरीर सहित। और बाहर **साकार है, और जिनके शरीर नहीं, ऐसे निष्कल परमात्मा निराकारस्वरूप सिद्ध परमेष्ठी हैं,....** अरिहन्त को साकार कहा। इन्हें (सिद्ध को) निराकार कहा। **वे सकल परमात्मा से भी उत्तम हैं,....** इन सकल परमात्मा से, अरिहन्त से **वही सिद्धरूप शुद्धात्मा ध्यान करनेयोग्य है।** ऐसे ही सिद्ध भगवान और ऐसा ही आत्मा। आहाहा! सिद्ध हुए वह तो उनकी पर्याय में है। यह तो सिद्ध स्वरूप ही है। सिद्ध होना, यह पर्याय हुई। ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड स्वयं आत्मा—शुद्धात्मा है।

मुमुक्षु : अरिहन्त, सिद्ध....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इससे आत्मा सिद्ध करते हैं, देखो! **वही सिद्धरूप शुद्धात्मा ध्यान करनेयोग्य है।** इसका अर्थ यह आत्मा है। वह सिद्ध जैसा ही यह आत्मा है। आहाहा! बात ऐसी है। आहाहा! सिद्ध समान आत्मा है। सिद्ध की व्याख्या की, परन्तु 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आता है न ? आहाहा! सिद्ध हैं, वे तो पर हैं। पर को उपादेय करने जाये तो व्यवहार हो जाता है। परन्तु ऐसा सिद्धस्वरूपी भगवान आत्मा है। वह सिद्ध की पर्याय तो एक समय की है और ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड। आहाहा! सिद्धस्वरूपी सिद्ध परमात्मा शुद्धात्मा अपना, वही उपादेय—आराधनेयोग्य है। ऐसा है इसमें तो। आहाहा!

अब इसमें लोगों को रस नहीं आता, फिर भक्ति, यात्रा, रथयात्रा, बैण्डबाजा करे, दस-बीस हजार लोग साथ में (हों), लो! और हजार-हजार, दो-दो हजार के एक-एक बैण्डबाजा। दस-बीस तो बैण्डबाजा हों। बड़ी रथयात्रा। चालीस हजार आदमी हों

तो दो-दो हजार के बीच एक-एक बैण्ड। बीस बैण्ड। कैसी धमाल चले, लो! अपने जयपुर नहीं की थी? चालीस हजार लोग। चालीस हजार लोग।

मुमुक्षु : कितना अधिक धर्म का फैलाव?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म? रथयात्रा ऐसी कि लोग देखने निकले। प्रायः तब वहाँ साधु थे।

मुमुक्षु : धर्मसागर....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्मसागर नहीं, देशभूषण। देखने निकले थे। परन्तु कैसा! वह तो बनने की बाहर की प्रवृत्ति तो उसके काल में बनने की है। उसे कौन करे? भाई! आहाहा! लोगों को बाह्य की महिमा विशेष, इसलिए लोग ऐसा माने। परन्तु इससे कहीं उसके कारण आत्मा कुछ प्राप्त होता है, ऐसा है? करोड़ संख्या इकट्ठी हो और हो.. हा (करे)। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी जो शुद्ध पूर्ण परिणति उससे प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त नहीं। आहाहा! 'लाख बात की बात...' आता है न यह? 'एक निश्चय उर लाओ। छोड़ी जगत द्वंद्व-फंद निज आतम ध्याओ।'

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात सच्ची। कर्म में ऐसा कहते थे वहाँ। ऐसा कि वह अनित्य का कहा था न? पर के कारण विकार होता है, यह ऐसी अनीति सम्भव नहीं... ऐसे-ऐसे टुकड़े (रखे)। परन्तु जो मूल हो, टुकड़ा ही हो न? (संवत्) २०१३ के वर्ष में। 'कर्म बिचारे कौन...' ऐसी बात करे। आहाहा! बापू! कर्म तो क्या करे? तुझमें शुभ विकल्प हो, वह चैतन्य को क्या करे? नुकसान करे। आहाहा! घातक, कल कहा था न? व्यवहार का विकल्प है, वह घातक है। उसे साधन कहना, वह तो उपचार के कथन हैं, भाई! आहाहा! बिल्ली को सिंह कहना। यह दृष्टान्त दिया था न? पुरुषार्थसिद्धि उपाय। बिल्ली को सिंह कहे, बिल्ली सिंह होती होगी कभी? परन्तु उसकी क्रूरता को जरा देखकर कहा जाता है कि यह सिंह। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **सिद्धरूप शुद्धात्मा ध्यान करनेयोग्य है।** लो! यह यहाँ लोकाग्र लेंगे अभी। परन्तु इस लोक के अग्र में—इसके विकल्प के अग्र में भगवान विराजता है आगे। व्यवहार विकल्प आदि है, उससे भिन्न वस्तु है। वह लोकाग्र में सिद्ध है। वे सिद्ध हैं, वह व्यवहार है।

गाथा - २५

अथ त्रिभुवनवन्दित इत्यादिलक्षणैर्युक्तो योऽसौ शुद्धात्मा भणितः स लोकाग्रे तिष्ठतीति कथयति –

२५) एयहिं जुत्तउ लक्खणहिं जो परु णिक्कलु देउ।
सो तहिं णिवसइ परम-पइ जो तइलोयहँ झेउ।।२५।।

एतैर्युक्तो लक्षणैः यः परो निष्कलो देवः।
स तत्र निवसति परमपदे यः त्रैलोक्यस्य ध्येयः।।२५।।

एतैस्त्रिभुवनवन्दितादिलक्षणैः पूर्वोक्तैर्युक्तो यः। पुनश्च कथंभूतो यः। परः परमात्म-स्वभावः। पुनरपि किंविशिष्टः। निष्कलः पञ्चविधशरीररहितः। पुनरपि किंविशिष्टः। देवस्त्रिभुव-नाराध्यः स एव परमपदे मोक्षे निवसति। यत्पदं कथंभूतम्। त्रैलोक्यस्यावसानमिति। अत्र तदेव मुक्तजीवसदृशं स्वशुद्धात्मस्वरूपमुपादेयमिति भावार्थः।।२५।। एवं त्रिविधात्मकथनप्रथम-महाधिकारमध्ये मुक्तिगतसिद्धजीवव्याख्यानमुख्यत्वेन दोहकसूत्रदशकं गतम्।

आगे तीन लोककर वंदना करने योग्य पूर्व कहे हुए लक्षणों सहित जो शुद्धात्मा कहा गया है, वही लोक के अग्र में रहता है, यही कहते हैं –

पूर्वोक्त लक्षण युक्त जो उत्कृष्ट निष्कल देवता।
त्रैलोक्य का वह ध्येय रहता परम पद में है सदा।।२५।।

अन्वयार्थ :– [एतैः लक्षणैः] 'तीन भुवनकर वंदनीक' इत्यादि जो लक्षण कहे थे, उन लक्षणोंकर [युक्तः] सहित [परः] सबसे उत्कृष्ट [निष्कलः] औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण–ये पाँच शरीर जिसके नहीं है अर्थात् निराकार है, [देवः] तीन लोककर आराधित जगतका देव है, [यः] ऐसा जो परमात्मा सिद्ध है, [सः] वही [तत्र परमपदे] उस लोक के शिखर पर [निवसति] विराजमान है, [यः] जो कि [त्रैलोक्यस्य] तीन लोक का [ध्येयः] ध्येय (ध्यान करने योग्य) है।

भावार्थ :– यहाँ पर जो सिद्धपरमेष्ठी का व्याख्यान किया है, उसी के समान अपना भी स्वरूप है, वही उपादेय (ध्यान करने योग्य) है जो सिद्धालय है वह देहालय

है अर्थात् जैसा सिद्धलोक में विराज रहा है वैसा ही हंस (आत्मा) इस घट (देह) में विराजमान है।।२५।।

गाथा - २५ पर प्रवचन

२५) एयहिं जुत्तउ लक्खणहिं जो परु णिक्कलु देउ।
सो तहिं णिवसइ परम-पइ जो तइलोयहँ झेउ।।२५।।

अन्वयार्थः—आहाहा! **तीन लोककर वन्दना करनेयोग्य पूर्व कहे हुए लक्षणों सहित जो शुद्धात्मा कहा गया है, वही लोक के अग्र में रहता है,....** बाहर से लोक के अग्र में रहता है। अन्दर में विकल्प से भिन्न अन्दर भगवान रहता है। आहाहा! **यही कहते हैं—'तीन भुवनकर वन्दनीक' इत्यादि जो लक्षण कहे थे, उन लक्षणोंकर सहित सबसे उत्कृष्ट निष्कल....** निष्कल अर्थात् शरीररहित। **औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्माण ये पाँच शरीर जिसके नहीं है, अर्थात् निराकार है, तीन लोककर आराधित जगत का देव है,** आहाहा! **ऐसा जो परमात्मा सिद्ध है, जो परमात्मा वही उस लोक के शिखर पर....** आहाहा! **परमपदे 'नीवसई' विराजमान है, जो कि तीन लोक का ध्येय ध्यान करनेयोग्य है।** आहाहा! यह जगत के प्राणी को इसका ध्यान करनेयोग्य तीन लोक का नाथ भगवान है। आहाहा! समझ में आया? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)